SHODH SAGAR®
Innovative Research Thoughts
ISSN: 2454-308X | Vol. 10 | Issue 3 | Jul - Sep 2024 | Peer Reviewed & Refereed

प्रभा खेतान के साहित्य में 'स्त्रीत्ववाद' में चेतना का स्वरूप

मोनिका उपाध्याय
शोध छात्रा (हिन्दी विभाग)
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
शोध केन्द्र : शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुरैना

डॉ. साधना दीक्षित
प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मुरैना (म.प्र.)
DOI: https://doi.org/10.36676/irt.v10.i3.1492
Published: 19-09-24

स्त्री का व्यक्तित्व बदलती हुई संवेदनाओं के अनगिनत आयामों में विकसित हुआ है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक स्तर पर हमारे देश के मानवाधिकारों में कुछ बदलाव भी संभव हुए हैं। सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन को भी सहसा ही लक्षित किया जा सकता है। वर्तमान में स्त्री सजग हुई है, आत्मनिर्भर हुई है और अपने अधिकारों के प्रति संचेतना के निर्माण के निरन्तर प्रयासों में लीन है। इस संदर्भ में वर्षों पूर्व महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियॉं' में वर्णित एक प्रसंग में वे कहती हैं, 'स्त्री स्वतंत्रता का आकार स्त्रियोचित गुणों के आधार पर होना चाहिए।

शोध पत्र :

आज हिन्दी साहित्य में चारों तरफ स्त्री–विमर्श की दुंदुभि बज रही है। वर्तमान समय में स्त्री–विमर्श आन्दोलन की बजाय हव्वा बन गया है। कोई भी संगोष्ठी, सेमिनार अथवा साहित्यिक सम्मेलन हो, यदि स्त्री–विमर्श पर चर्चा न हो, तो बात अधूरी समझी जाती है। आज हर साहित्यकार इसके पक्ष विपक्ष में कुछ–न–कुछ लिख या बोल रहा है। स्त्री–विमर्श के साथ ही स्त्री–चेतना की जड़ें भी जुड़ी हुई हैं।

20वीं सदी के पूर्वाद्ध में स्त्री के माँ रूप का प्रतीक उभरा। नारी शक्ति की अवधारणा के अनुसार राष्ट्रमाता के रूप में, रक्षा करने वाली उग्र रूप धारिणी महाकाली के रूप में देखा गया। मैडम कामा तथा सरोजिनी नायडू ने जहाँ मातृशक्ति का बयान करते हुए चेतावनी दी कि, **"याद रखो जो हाथ पालना झुलाते हैं, वही दुनिया पर राज करते हैं। वहीं मातृभाव के उद्धारक गुणों का उल्लेख करते हुए स्त्री को भोग की वस्तु समझने की खतरनाक प्रवृति के प्रति भी चेताया। स्त्रीत्ववादियों ने समानता की अवधारणा को व्यापक बनाने पर जोर दिया ताकि किसी भी ढांचे की असमानता को चिन्हित करके उसे मिटाया जा सके।"**[1]

प्रभा खेतान ने अपने साहित्य के माध्यम से परिचय कराया है कि स्त्रियों द्वारा अपने निजी जीवन पर पुरुषों के नियंत्रण के अधिकारों को लेकर आवाजें उठने लगी। आर्थिक आत्मनिर्भरता इसका सबसे सशक्त पहलू था और इसके साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी समान अधिकारों की मांग ने जोर पकड़ा परन्तु इन सबसे ऊपर और महत्वपूर्ण थी महिलाओं की उनकी देह पर नियंत्रण के अधिकार की मांग। बीसवीं सदी के प्रारंभ में स्त्री देह को जातीय तथा राष्ट्रीय पुनर्जीवन के नजरिए से देखा जाता था।

© 2024 Published by Shodh Sagar. This is a Gold Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons License [CC BY NC 4.0] and is available on https://irt.shodhsagar.com

बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में स्त्रीत्ववादियों का मत है कि **"किसी स्त्री के शरीर को सामाजिक नियंत्रण की वस्तु नहीं माना जाना चाहिए।"[2]** जिन परिस्थितियों में यह मत व्यक्त किया गया, अगर हम उस पर यथार्थपरक दृष्टि डालें तो इसका एकदम सीधा–सादा और उचित उतर पाएंगे कि नारी के प्रति यौन शोषण के अपराध की परिभाषा की परिधि को विस्तार देकर उसमें पारिवारिक और वेश्याओं के बलात्कार को भी शामिल किया जाए।

प्रसिद्ध स्त्रीत्ववादी, विचारक सिमोन द बोउवार के अनुसार, मतदान और अन्य तमाम नागरिक अधिकारों ने बावजूद आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में स्त्री की स्वतन्त्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धान्तिक रह जाती है। पुरुष पर अपनी आर्थिक निर्भरता की स्थिति में स्त्री अपनी किसी भी भूमिका– पत्नी, प्रेमिका या रखैल में स्वावलंबी नहीं हो पाती। अर्थ ही व्यक्ति को वह अधिकार देता है जिसके द्वारा वह अपनी परियोजनाएं पूरी कर सकता है। आर्थिक रूप से सुदृढ़ स्त्री ही अन्य विषयों पर स्वतन्त्रता से सोच सकती है। इसी सबलता के कारण ही स्त्री में आत्म–चेतना का आविर्भाव हुआ।

प्रभा खेतान के साहित्य में स्त्री आत्म–चेतना के अंतर्गत स्त्रियों की राजनीतिक छवि पर विचार करना एक प्रमुख मुद्दा रहा है। राजनीति में प्रत्यक्ष भागीदारी के साथ–साथ उसने राजनीतिक षडयंत्रों, उनकी कुटिल चालों, नेताओं के दोहरे–तीहरे, मापदंड व उनकी गतिविधियों को समझा। शिक्षा प्राप्त करने पर भी स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चक्रव्यूह को नहीं भेद पाई तो उसे लगा कि वह अपनी आत्म–चेतना की स्थापना व आत्म–विश्वास अर्जित करने के लिए आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने की आवश्यकता है परन्तु जब आर्थिक स्वावलंबन के बाद भी वह अपने प्रति हो रहे शोषण का पूरी तरह प्रतिरोध नहीं कर सकी तो उसे राजनीति के क्षेत्र में आना अनिवार्य लगा। सत्ता प्राप्त करके ही वह समाज की मान्यताओं को अपने अनुसार बदल सकती है। तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था को समाप्त करके समतामूलक समाज की स्थापना में अपनी अहम भूमिका निभा सकती है।

प्रभा खेतान लिखती हैं कि स्त्री की आत्म–चेतना उन मृत परम्परागत रूढ़ियों का विरोध करती हैं जिनके अस्तित्व से समाज में विकास की गति धीमी हो जाती है। विश्व स्तर पर कार्यरत महिला संगठनों का निर्माण पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए हुआ है। ये संगठन स्त्री शोषण के कारणों का विश्लेषण करते हैं तथा स्त्रियों में चेतना जागृत करने का ही प्रयत्न करते हैं ताकि वे अपने प्रति होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध लड़ सकें। इन संगठनों के कारण एक स्त्री दूसरी स्त्री से भावनात्मक रूप से जुड़ी हुई है और अन्याय के खिलाफ मिलकर आवाजें भी उठाई हैं।

इस प्रकार इन संगठनों के कारण स्त्रियों ने समाज में अपनी स्वस्थ छवि को स्थापित करने का प्रयास किया है। स्त्री की आत्म–चेतना परिवार, विवाह, पुरुष के खिलाफ नहीं है बल्कि यह तो उनके दमनकारी रूप का विरोध करती है। विडम्बना तो यह है कि व्यवस्था का नियामक पुरुष खुद को नही जांच रहा बल्कि ऊँचा बोलकर वास्तविकता को गलत सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है। स्त्री में शारीरिक बल, दिमाग आदि मनुष्योचित गुणों की कमी नहीं है परन्तु उसे कमजोर घोषित किया गया है क्योंकि स्त्री को कभी बल–बुद्धि आजमाने का अवसर ही नहीं दिया गया।

"पुरुष तंत्र ने जो नियम बनाए हैं वे सब स्त्री–चेतना के कारण टूटने के कगार पर है और टूटते भी जा रहे हैं। स्त्री आत्म–चेतना के स्वरूप के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह पुरुष सत्ता, समाज एवं व्यवस्था के नियमों और पूर्वाग्रहों से स्त्री की मुक्ति का सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन है जो परिपक्वता को तलाश रहा है।"[3]

स्त्रियों को अपने अधिकारों का ज्ञान होना, समाज में अपने हक के लिए लड़ना स्त्री की आत्म–चेतना को ही प्रदर्शित करता है। यह स्वयं चेती हुई स्त्री के पाए हुए स्वत्वाधिकार हैं, जहाँ उसे अपने खिलाफ होने वाले हर गैर वाजिब सुलुक से खुद निपटना है, आत्म–निर्णय का यह संघर्ष स्त्री के स्वविवेक से ही हो सकता है। इसी कारण समाज, संस्कृति और साहित्य में स्त्री का चिन्तनशील रूप प्रकट होने लगा है। आज विभिन्न स्त्री संघटनों द्वारा स्त्री

© 2024 Published by Shodh Sagar. This is a Gold Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons License [CC BY NC 4.0] and is available on https://irt.shodhsagar.com

अधिकार के लिए संघर्ष किया जा रहा है और जड़– रूढ़ियों के विरूद्ध लड़ाई तेज हो गई है। अनेक महिला रचनाकारों की रचनाओं में इस प्रकार के स्त्री पात्र चित्रित किए जा रहे हैं। जो इन रचनाकारों की चेतना का ही परिणाम है।

कुसुम त्रिपाठी ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट करते हुए कहा है, ष्औरत के पितृसत्तात्मक उत्पीड़न व शोषण, उसकी आर्थिक निर्भरता, पुरुष की अधीनता के अर्धसामंती मूल्यों, जहाँ भारत के एक बड़े हिस्से को जकड़ कर हमारी अर्थ व्यवस्था के विकास को पीछे कर दिया है। वहीं उपभोक्तावादी संस्कृति ने भी हमारी सामाजिक जिदंगी में भी अपनी पैठ बना ली है। सीखना चाहिए और एक बार फिर लक्ष्य प्राप्ति के अभियान में उन्हें जुटने देना चाहिए पितृसत्ता के मूल में है– पुरुष में प्रभुत्व की आदत, आर्थिक उपार्जन पर अधिकार। यह पितृसत्ता ऊपर से चाहे जितनी उदार और सरल लगे, पर भीतर से यह बड़ी जटिल है क्योंकि दोष इसकी बनावट में ही है।

पितृसत्ता के द्वेष को आधी आबादी ने झेला है और नागरिक अधिकारों से वंचित रखा है। आज स्त्रियों की आत्म–चेतना के माध्यम से लेखिकाएँ, आंदोलनकारी महिलाएं, कार्यकर्ता, बुद्धिजीवी वर्ग इस सच को सामने ला रहे हैं कि हमें एक ऐसे समाज की नींव रखनी है जिसमें स्त्री का शोषण न हो, पुरुष अतिरिक्त मुखिया होने के दंभ से ग्रस्त न हो। परिवार, समाज, व्यवसाय, कानून आदि क्षेत्रों में दोनों को समान अधिकार एवम् अवसर मिले तो इस बदलाव के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था और इसकी शाखाओं को बदला जाए। इसी के चलते स्त्रीत्ववादी विचारकों ने सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के विरूद्ध संघर्ष किया।

''सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के अनेक रूप हैं। परिवार में शारीरिक, लैंगिक और मनोवैज्ञानिक हिंसा, दहेज से जुड़ी, वैवाहिक बलात्कार, दंगों और युद्ध के दौरान स्त्रियों पर अत्याचार, स्त्री कैदियों के साथ पुलिस का दुर्व्यवहार, स्त्रियों की शिक्षा और स्वास्थ्य की उपेक्षा आदि।''[4] स्त्री–मुक्ति संगठनों ने इन सभी कुरीतियों के खिलाफ लंबी लड़ाई लड़ी। इन स्वायत संगठनों के कारण ही स्त्रियां अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के प्रति जागरूक हुई वे पुलिस स्टेशन में जाकर शिकायत दर्ज करवाने लगी। चाहे वह बलात्कार का केस हो या दहेज हत्या का या फिर पारिवारिक हिंसा का ये महिला संगठन मात्र आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लड़ाई ही नहीं लड़ रहे, बल्कि समूची समाज व्यवस्था को बदलने के लिए कार्यरत हैं।

प्रभा खेतान का मानना है कि स्त्रियों के लिए बेहतर शैक्षणिक सुविधाएं, उन्नत स्वास्थ्य तथा प्रसूति सेवाएँ और उनके भाइयों के समान ही वोट देने के अधिकार दिए जाएं। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि सरकार को स्त्री हितों का ध्यान रखते हुए विधवाओं के लिए विशेष शिक्षा संस्थान खोलने चाहिएं। इसके साथ ही उन्होंने महिलाओं के लिए काम के अधिक अवसर उपलब्ध कराने की मांग की। सरला देवी ने नस्लवाद पर आक्रमण करते हुए कहा, **''भारतीय पत्नियों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए तथा किसी विवाहित भारतीय द्वारा किसी विदेशी स्त्री से विवाह करने को अपराधिक एवं गैरकानूनी करार दिया जाना चाहिए।''**[5]

इस कुसंगति के खिलाफ आंदोलन नारी–मुक्ति संघ ने चलाया। कुसंस्कार, अंधविश्वास व अन्य सामाजिक बंधनों के जरिए स्त्रियों पर तरह–तरह के शोषण व अत्याचार के चक्र चलाए जाते हैं। इसीलिए पुरानी संस्कृति के खिलाफ संघर्ष किए बिना महिलाओं के अन्दर नए चिंतन, अधिकार बोध तथा इज्जतबोध को पैदा नहीं किया जा सकता। अनेकों महिला कार्यकर्ताओं ने आम जनता के अन्दर पुरानी पक्षपाती संस्कृति का भंडाफोड़ करते हुए एक नई संस्कृति के सृजन में योगदान दिया। जिसके फलस्वरूप स्वाधीन भारत में स्त्रियां धार्मिक तथा सामाजिक बुराइयों के खिलाफ संगठित होने लगी हैं जिससे स्त्रियाँ जुल्मों को नहीं सहना चाहती, बल्कि खुलेआम विरोध करती हैं।

इस बात से इन्कार भी नहीं किया जा सकता है कि स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों में कमी आई हैं किन्तु जड़ें जमाये बैठी रूढ़ परंपराओं से संघर्ष अभी जारी है। इन कुरीतियों को समाप्त करने के लिए सामाजिक ढांचे में बदलाव की जरूरत है स्वतन्त्रता के बाद स्त्रियों ने आर्थिक स्वावलम्बन के लिए संघर्ष शुरु किया। भारत के कामगार आन्दोलन के संघर्ष के इतिहास में संगठित क्षेत्र में महिलाओं की संख्या पुरुषों से कम यानी 12

© 2024 Published by Shodh Sagar. This is a Gold Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons License [CC BY NC 4.0] and is available on https://irt.shodhsagar.com

प्रतिशत थी तथा पुरुषों की तुलना में वेतन भी कम था। स्त्री आंदोलनों में इन स्त्री श्रमिकों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया।

भारत के कामगार आन्दोलन के संघर्ष के इतिहास में संगठित क्षेत्र में महिलाओं की संख्या पुरुषों से कम यानी 12 प्रतिशत थी तथा पुरुषों की तुलना में वेतन भी कम था। स्त्री आंदोलनों में इन स्त्री श्रमिकों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। यह संघर्ष आजादी की लड़ाई के साथ साथ कामगारों के हक की लड़ाई के रूप में भी चला। देश की अधिकांश स्त्रियां इन्हीं हालातों में आर्थिक स्वावलम्बन के लिए संघर्ष कर रही थी।

अतः कहा जा सकता है कि जब तक स्त्री को समान न्याय देने वाली व्यवस्था का निर्माण नहीं होगा तब तक यह विद्रोह चलता रहेगा। स्त्रीत्ववादी आत्म–चेतना की स्थापना करने के लिए सबसे पहले स्त्रियों ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट किया है। इसी व्यवस्था के कारण स्त्री अपने मानवीय अधिकारों से वंचित रह जाती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण ही स्त्री का बौद्धिक, सामाजिक विकास अवरूद्ध होता है।

संदर्भ सूची

1– कुमार राधा : स्त्री संघर्ष का इतिहास, नयी दिल्ली–110002, वाणी प्रकाशन, 21–ए दरियागज, प्रथम संस्करण–2002, पृष्ठ–13

2– बोउवार द सिमोन द सैकिंड सेक्स, अनुवादक खेतान प्रभा स्त्री उपेक्षिता, नई दिल्ली–110003, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, जे–40 जोरबाग लेन, नवीन संस्करण–2002, पृष्ठ–354

3– त्रिपाठी कुसुम, जब स्त्रियों ने इतिहास रचा, नागपुर– 440014, नवजागरण प्रकाशन, संस्करण–2004, पृष्ठ–145

4– कुमार राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990), नई दिल्ली–110002, वाणी प्रकाशन, 21–ए दरियागंज, पृष्ठ–121

5– त्रिपाठी कुसुम, जब स्त्रियों ने इतिहास रचा, नागपुर– 440014, नवजागरण प्रकाशन, संस्करण–2004, पृष्ठ–168

© 2024 Published by Shodh Sagar. This is a Gold Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons License [CC BY NC 4.0] and is available on https://irt.shodhsagar.com